International Journal of Technology and Applied Science (IJTAS)

E-ISSN: 2230-9004 ● Website: www.ijtas.com ● Email: editor@ijtas.com

संस्कृतिकरण की अवधारणाः एक आलोचनात्मक विश्लेषण

डॉ. नौमी प्रिया

असि. प्रो.
समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, सम्भल

परिवर्तन शाश्वत है। प्रकृति का कोई भी अंग ऐसा नही है, जो पूर्णतः अपरिवर्तनीय हो। यही कारण है कि अतीत में जो चीजें जैसी थीं वैसी नहीं हैं और वर्तमान में जो चीजें जैसी हैं भविष्य में वैसी नही रहंगी। जहाँ तक मानव समाज का सवाल है, तो इतिहास पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान मानव समाज वैसा नही है जैसा हजारो वर्ष पूर्व था। इतिहास से मानव समाज के विकास के स्तरों का पता चलता है, जो एक स्तर से दूसरे स्तर पर आने की प्रक्रिया को परिवर्तन द्वारा ही इंगित करता है। आदि मानव समाज शिकारी व घुमन्तु जीवन से पशुपालन, पशुपालन से कृषि के कारण स्थाई जीवन जो कि गाँव से प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात कृषि से औद्योगीकरण जिसके परिणाम स्वरुप नगरों का विकास हुआ ये नगर भी महानगरों में परिवर्तित हो रहे है कहने का अभिप्राय यह है कि मानव समाज भी परिवर्तनशील है यह और बात है कि प्रत्येक मानव समाज में परिवर्तन की गति व प्रकृति अलग-अलग होती है। अन्य समाज की तुलना में भारतीय समाज कम परिवर्तनशील मानी जाती है, क्योंकि भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँव में रहती है और गाँव लगभग स्थायित्व का प्रतीक है। इसी बात को ध्यान मं रखते हुये नजमुल करीम ने भारत के ग्रामीण समाज की प्रकृति के सम्बन्ध में लिखा है ''एक राजवंश के बाद दूसरा राजवंश का पतन होता गया। क्रान्ति के बाद क्रान्ति होती गयी लेकिन ग्रामीण समुदाय आज भी लगभग वैसी-की- वैसी ही है।'' एस.वी. केतकर, डी.एन. मजूमदार, टी.एन. मदान, जैसे सामाजिक चिन्तकों का विचार है कि भारतीय ग्रामीण समुदाय गतिहीन है क्योंकि यह जाति व्यवस्था पर आधारित है जो कि ''एक बन्द स्तरीकरण'' का प्रतीक है। लेकिन ऐसा मानना सही नही है, क्योंकि व्यक्ति की जाति तो नहीं बदलती लेकिन जाति की स्थिति बलती रहती है।

परिवर्तन के कई आयाम होते हैं। इन आयामों में परिवर्तन की प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण आयाम है यह प्रक्रिया कई प्रकार के होते हैं जैसे औद्योगीकरण, पश्चिमीकरण आधुनिकीकरण, लौकिकीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण आदि भारतीय संदर्भ में परिवर्तन की एक अन्य प्रक्रिया समाजशास्त्रियों द्वारा प्रकाश में लायी गयी, जिसे ''संस्कृतिकरण'' कहते हैं।

प्रस्तुत लेख में इसी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया की आलोचनात्मक विश्लेशण करने का प्रयास किया गया है।

भारत में अंग्रेजों के आगमन और उसके द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था के कारण भारतीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व बौद्धिक क्षेत्रों में कई परिवर्तन हुये जिससे परम्परागत भारतीय समाज व्यवस्था की प्रकृति बदलने लगी। चूँकि भारतीय परम्परागत सामाजिक व्यवस्था जाति पर आधारित होने के कारण जाति आधारित व्यवहार प्रतिमान द्वारा संचालित होती थी, लेकिन अंग्रेजो के शासन व्यवस्था के कारण जाति आधारित व्यवहार प्रतिमान में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया, जिससे भारतीय समाज की आन्तरिक स्थायित्व भाव में परिवर्तन होने लगा, क्योंकि अंग्रेज विभिन्न जातियों के बीच होने वाले विवादों को जाति निरपेक्ष भाव से निस्तारित करते थे। साथ-ही-साथ सदियों से जाति व्यवस्था के शिकार पिछड़े व अश्पृश्य जातियाँ अपने मान-सम्मान के लिए संघर्षशील होने लगी। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि जातियाँ जड़ इकाई नही है क्योंकि जातियांे की स्थिति व आपसी सम्बन्ध समय-समय पर बदलते रहे हैं। जैसा कि डॉ. राम मनोहर लोहिया1 ने लिखा है ''सत्ता और सम्पन्नता हर काल में बराबर एक क्षेत्र से दसरे क्षेत्र में बदलते रहे हैं। कोई भी जाति सदा के लिये इतिहास की श्रेष्ठतम चोटी पर नहीं बैठी रही है'' जाति व्यवस्था के अन्तर्गत इसी पद सोपानात्मक परिवर्तन के लिये प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की अवधारणा का विकास किया।

प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग मैसूर के रामपुरा गाँव के कुर्ग लोगों के सामाजिक-आर्थिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिये किया था। उन्होने पाया कि जाति पद सोपान में निम्न जातियों के लोग ब्राह्मणों की प्रथा, परम्परा, संस्कार, कर्मकाण्ड, वेशभूशा, रहन-सहन, खान-पान आदि का अनुकरण कर जाति पद सोपान में

कुछ समय के पश्चात उच्च स्थिति प्राप्त करने का न सिर्फ प्रयास कर रहे हैं, बल्कि एक-दो पीढ़ियों के बाद उच्च स्थिति का दावा भी कर रहे हैं। इसीलिये प्रो. श्रीनिवास ने ऐसी प्रक्रिया के लिये सर्वप्रथम ब्राह्मणीकरण शब्दावली का प्रयोग किया क्योंकि उन्होने पाया कि कुछ लिंगायत जो कि विश्वकर्मा को अपना आराध्य देव मानते थे वे ब्राह्मणों की सभ्यता, संस्कृति को अपना रहे हैं। उदाहरण के लिये वे ब्राह्मणों की तरह जनेऊ पहनने लगे, माँसाहार को त्यागने लगे, विधवा पुर्नविवाह न करने लगे और बाल विवाह को अपनाने लगे। प्रो. श्रीनिवास की इस मान्यता की जब कुछ समाजशास्त्रियों जैसे पोकॉक, मिल्टन, सिंगर आदि ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि हिन्दू समाज व्यवस्था की निम्न जातियाँ सिर्फ ब्राह्मणों की ही नही बल्कि क्षत्रिय, वैश्य एवं अन्य प्रभुत्वशाली जातियों की जीवन शैली को अपना रही है। परिणाम स्वरुप प्रो. श्रीनिवास ने ब्राह्मणीकरण के स्थान पर संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रयोग करने लगे। प्रो. श्रीनिवास[2] ने संस्कृतिकरण के सन्दर्भ में लिखा है कि ''संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई निम्न हिन्दू जाति, जनजाति अथवा अन्य समूह अपने से किसी ऊँची जाति और प्रायः द्विज जाति की रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन शैली को अपनाने लगता है। सामान्यतः ऐसे परिवर्तनों के बाद वह जाति परम्परा से स्थानीय समाज द्वारा पद संस्तरण में जो स्थान उसे मिला हुआ है उससे ऊँचे स्थान का दावा करने लगती है। साधारणतः अधिक समय तक बल्कि असल में एक-दो पीढ़ियों तक दावा करने के पश्चात ही उसे स्वीकृति मिलती है। कभी कभी तो ऐसे स्थान का दावा करने लगती है कि उसके पडोसी स्वीकार करने को तैयार नही होते हैं।''

अतः कहा जा सकता है कि संस्कृतिकरण के साथ-साथ एवं हमेशा उसके परिणामस्वरुप सम्बद्ध जाति ऊपर की ओर गतिशील होती है। लेकिन गतिशीलता संस्कृतिकरण के बिना भी अथवा गतिशीलता के बिना भी संस्कृतिकरण सम्भव है लेकिन संस्कृतिकरण के कारण गतिशीलता के परिणाम स्वरुप सामाजिक व्यवस्था में पदमूलक परिवर्तन ही होते हैं व्यवस्था में कोई संरचनात्मक परिवर्तन नहीं होता है अर्थात एक जाति अपने निकट की जातियों से ऊपर उठ जाती है और दूसरी जाति नीचे आ जाती है। लेकिन यह सब एक स्थाई सोपान में घठित होता है। स्वंय व्यवस्था में कोई परिवर्तन नही होता है[3]

उक्त विवेचना से संस्कृतिकरण के निम्नलिखित लक्षण प्रकाश में आते है-

1- संस्कृतिकरण का सम्बन्ध प्रायः निम्न व मध्य हिन्दू जातियों से है।

2- इस प्रक्रिया से सम्बद्ध जातियों की स्थिति में पदमूलक परिवर्तन होता है न कि संरचनातमक परिवर्तन।

3- यह प्रक्रिया सिर्फ निम्न हिन्दू जातियों तक ही सीमित नही है बल्कि जन जातियों एवं अन्य सामाजिक समूहों में भी पायी जाती है।

4- इसके कई आदर्श होते हैं जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं अन्य प्रभु जातियाँ।

5- यह भारतीय संदर्भ में सर्वकालिक प्रक्रिया रही है। जैसा कि पणिक्कर4 ने लिखा है कि ईसा पूर्व पाँचवी सदी में ही सच्चे क्षत्रियों का अन्तिम वंश (नन्द वंश) समाप्त हो गया था। इसके पश्चात सभी राज परिवार किसी-न-किसी गैर क्षत्रिय जाति से आया है।'' वर्तमान समय में जाट, गुर्जर, यादव, कुर्मी, कोयरी इत्यादि क्षत्रिय जबकि बढ़ई, लोहार, माली, नाई, कुम्हार आदि ब्राह्मण तथा तेली, तमोली आदि वैश्य होने का दावा कर रहे हैं।

6- संस्कृतिकरण करने वाली जातियाँ ब्राह्मण साहित्य के मूल्यों जैसे धर्म-कर्म, स्वर्ग-नरक, माया-मोक्ष, पाप - पुन्य जैसे शब्दों का प्रयोग आपसी बातचीत में करने लगते हैं।

7- संस्कृतिकरण से अपनी जाति की स्थिति मंे परिवर्तन लाने के लिये वे पूर्व से ही अपना सम्बन्ध किसी कुलीन वंशावली या महापुरुषा से बताने लगते हैं। जैसे कुर्मी, राम के पुत्र लव से तथा कोयरी राम के पुत्र कुश से, बढ़ई लोहार, विश्वकर्मा से इत्यादि ।

8- संस्कृतिकरण की प्रक्रिया अपनाने वाली जातियों की उच्च आकाँक्षा का प्रयास का प्रतीक है।

9- संस्कृतिकरण उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त करने की प्रतियोगिता है।

10- संस्कृतिकरण हिन्दू बृहत परम्परा की पदसोपान क्रम का विरोधी है क्योंकि हिन्दू बृहत दृष्टि से जातियों की अपरिवर्तनशीलता पर आधारित है।

11- संस्कृतिकरण निर्विरोध चलने वाली प्रक्रिया नही है बल्कि प्रबल जाति व कभी कभी स्वंय की जातियों के द्वारा भी विरोध किया जाता है।

12- सामान्यतः संस्कृतिकरण की प्रक्रिया उन जातियों में अधिक होती है जो शिक्षा, राजनीति एवं आर्थिक क्षेत्र में पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रगति करने लगती है।

संस्कृतिकरण के कारण भारतीय समाज व्यवस्था में पदमूलक परिवर्तन हुये हैं इसके परिणाम स्वरुप पिछड़े एवं अनुसूचित जातियों की जीवन शैली, जातिगत व्यवहार प्रतिमान में परिवर्तन, परमपरागत शक्ति संरचना में परिवर्तन सामाजिक

गतिशीलता में वृद्धि कर्मकाण्डों में वृद्धि, अन्तर्जातीय प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि, के साथ-साथ, खान-पान, रहन सहन, व्यवहार के तरीके, शिक्षा, साहित्य, नृत्य संगीत, कला तथा वैचारिकी में बदलाव आये हैं।

यद्यपि संस्कृतिकरण को सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रुप में मान्यता प्राप्त है लेकिन विभिन्न समाजशास्त्रियों ने इसकी आलोचना निम्न प्रकार की हैः-

प्रो. योगेन्द्र सिंह ने संस्कृतिकरण को अग्रिम सामाजीकरण कहा है क्योंकि यह मर्टन के संदर्भ समूह की अवधारणा से मिलती-जूलती प्रक्रिया है।

संस्कृतिकरण एक अस्पष्ट, जटिल अवधारणा है जिसमें ब्राह्मणीकरण पर-संस्कृतिकरण, अग्रिम सामाजीकरण, अनुकरण आदि प्रक्रियाओं के गुण सम्मिलित है। इसीलिये इस अवधारणा में स्पष्टता, निश्चितता एवं तार्किकता का अभाव है जैसा कि स्वंय प्रो. श्रीनिवास[5] ने लिखा है ''इसमें कोई शक नही कि संस्कृतिकरण एक बेढंगा शब्दावली है। भारतीय समाज की व्याख्या करने के एक प्रविधि के रुप में संस्कृतिकरण का महत्व इसकी जटिलता और लचीलापन के कारण सीमित है। संस्कृतिकरण एक अति जटिल विविध तत्वीय अवधारणा है।'' यही कारण है कि डी.एन. मजूमदार एवं एफ.जी. बेली ने संस्कृतिकरण को अनुपयोगी, असंगत और ढीली संकल्पना माना है।

प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण को एकतरफी प्रक्रिया के रुप में विश्लेषण किया है जो कि गलत है क्योंकि संस्कृतिकरण के अन्तर्गत न सिर्फ निम्न जाति के लोग ऊँची जाति की जीवन पद्धति को अपनाते हैं बल्कि उच्च जाति के लोग भी निम्न जाति के जीवन शैली का अनुकरण करते हैं, जिसे ''अ-संस्कृतिकरण; कहते हैं।

समाज में ऐसे भी लोग हैं जो ऊँची जाति की श्रेष्ठता को चुनौती देते हैं। गोपाल गुरु6 के षब्दों में ''बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में महाराष्ट्र के महारों ने ऊँची जाति के जीवन मूल्यों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है।

हेमन्त कुमार[7] के शब्दो में ''वास्तव में संस्कृतिकरण को अपनाने वाली निम्न जातियों में नकारात्मक चेतना का ही विकास हुआ है। अतः संस्कृतिकरण को एक ऐसा मॉडल मानना गलत है कि इस प्रक्रिया द्वारा निम्न जातियों की स्थिति ऊँची होती है''। काँचा इलैया8 ने संस्कृतिकरण को उत्तर औपनिवेषिक ब्राह्मणवादी समाजशास्त्र द्वारा स्थापित की गयी एक संकल्पना मात्र माना है जिसमें अनुत्पादक ब्राह्मणों को शुद्ध तथा उत्पादक बहुजन जातियों को दूशित माना है। ''इलैया यह प्रश्न खड़ा करते हैं कि यदि निम्न जातियों का संस्कृतिकरण हो जायेगा तो उत्पादक कार्य कौन करेगा?''

उक्त विश्लेशण के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रो. श्रीनिवास का संस्कृतिकरण की संकल्पना विवादास्पद अस्पष्ट व जटिल है क्योंकि इसमें कई प्रक्रियाआं यथा ब्राह्मणीकरण, पर-संस्कृतिग्रहण अ-संस्कृतिकरण पूर्वाभ्यासी सामाजीकरण संकीर्णीकरण का समावेश है। अधिकांष समाजशास्त्रियों की दृष्टि में यह अवधारणा वैज्ञानिकता से दूर व सतही ही विश्लेषण पर आधारित है। यह मात्र प्रो. श्रीनिवास का व्यक्तिगत अनुभूति व शब्दजाल है जिससे भारतीय जटिल समाज में होने वाले परिवर्तन को सही रुप में नही समझा जा सकता। इसके बावजूद भारतीय समाज में परिवर्तन को समझने के लिए इस अवधारणा का प्रयोग प्राध्यापक व शोधार्थी कर रहे हैं।

संदर्भ

1. डॉ. राम मनोहर लोहियाः इतिहास चक्र, लहर प्रकाशन इलाहाबद 1965 पृ.सं. 51
2. एम.एन. श्रीनिवास, सोशल चेंज इन मोर्डन इण्डिया, कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस, बर्कले, 1962 पृ.सं.-6।
3. एम.एन. श्री निवास (अनुवादित) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2.3, पृ.सं.-21।
4. के.एम. पणिक्करः हिन्दूसमाज निर्णय के द्वार पर, बम्बई 1965, पृ.सं.-8।
5. एम.एन. श्रीनिवास आर्टिकल ऑन संस्कृताइजेशन, फार इस्टर्न क्वार्टरली, वालूम-ग्ट नं.-4 अगस्त 1966, पृ.सं.-485।
6. गोपाल गुरुः दलित मूवमेन्ट इन मेनट्रीम सोशियालॉजी, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली 13 अ्रपैल, 1993 पृ.सं.--57.-71।

7. हेमन्त कुमार भटटुः न्यू डायमेंशन्स ऑफ कास्ट पॉलिटिक्स इन 199. अप्रकाशित एम.फिल. लघुशोध प्रबन्ध)डिपार्टमेंट ऑफ पोलिटकल साइंस, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली-199. पृ.सं.--82
8. कांचा इलैय्या (1998) टूवार्डस द दलिताइजेशन ऑफ द नेशन संकलित पार्थ चटर्जी द वैजेज ऑफ फ्रीडम फिफ्टी-इयर्स द इंडियन नेशनल-स्टेट ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस दिल्ली, पृ.सं.--78।